विषय- संस्कृत, बी॰ ए॰ स्नातक (प्रतिष्ठा)

प्रथम वर्ष (प्रथम पत्र)

किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग मात्र)

डॉ॰ ओम प्रकाश आर्य

महाराजा कॉलेज, आरा

Scanned with CamScanner

किरातार्जुनीय महाकाव्य का परिचय

महाकवि भारवि की अमर कलाकृति 'किरातार्जुनीयम्' विदग्ध महाकाव्य के अन्तर्गत परिगणित है। 'किरातार्जुनीयम्' संस्कृत साहित्य के पाँच महाकव्यों में से एक महाकाव्य माना जाता है। काल क्रमानुसार कालिदास विरचित 'रघुवंशम्' तथा 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य इसके पूर्ववर्ती हैं। माघकृत 'शिशुपालवधम्' तथा श्री हर्ष कृत 'नैषधीयचरितम्' इसके परवर्ती महाकाव्य हैं। संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध बृहत्त्रयी में अन्यतम महाकाव्य है–किरातार्जुनीयम्। यह महाकाव्य 18 सर्गों में निबद्ध है। इसका कथानक महाभारत के वनपर्व से लिया गया है। इसके नायक अर्जुन धीरोदात्तादि गुणों से संवलित सद्वंश क्षत्रिय हैं। प्रधान रस वीर है, शृंगारादि रस उसके पोषक हैं। प्रारम्भिक तीन सर्गों में आरम्भावस्था से समन्वित मुखसन्धि है, यहाँ बीज पड़ जाता है। चौथे से षष्ठ सर्ग के मध्य तक यत्नावस्था से युक्त प्रतिमुख सन्धि है। कथा का सूत्र दोनों सर्गों से दसवें सर्ग तक प्रायः एक जैसा है–चौथे में शरद्वर्णन, पाँचवें में हिमालय वर्णन है, बीच-बीच में षड्ऋतु वर्णन, सूर्योदय, सूर्यास्त, पर्वत, नदी, जलक्रीड़ा, रतिक्रीड़ा आदि का वर्णन है। ग्यारहवें सर्ग में कथा पुनः मन्थर गति से आगे बढ़ती है। इस सर्ग के अन्त तक प्राप्त्याशा से संयुक्त गर्भ सन्धि है। सत्रहवें सर्ग तक नियताप्ति अवस्था से समन्वित विमर्श सन्धि है।

इस महाकाव्य की कथा ऐतिहासिक है, दिव्य पाशुपतास्त्र की प्राप्ति फल है। प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में ही वर्ण्य विषय का निर्देश प्राप्त होता है–

श्रियः कुरुणाधिपस्य पालनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः।।

पाण्डवों की प्रशंसा कर सज्जन-प्रशंसा तथा दुर्योधन की दुर्जनता की निन्दा वर्णित है। 3 सर्गों से अधिक सर्ग अर्थात् अठारह सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग में श्लोक संख्या तीस से अधिक तथा दो सौ (200) से न्यून ही है। जैसे–प्रथम सर्ग में छियालीस (46), द्वितीय में उनसठ (59), तृतीय में साठ (60), चतुर्थ में सैतीस (37) तथा पञ्चम् में बावन

Scanned with CamScanner

(52) श्लोक हैं। अन्य सर्गों में भी लगभग यही क्रम है, इससे सर्ग न तो स्वल्प ही है और न महत् हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्त में नियमानुसार छन्द बदल दिया गया है। पाँचवें और अन्तिम सर्ग में से प्रत्येक में भिन्न-भिन्न छन्दों का प्रयोग करके महाकवि ने **"नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते"** की सार्थकता सिद्ध कर दी है।

सर्गान्त में अगले सर्ग की कथा की सूचना भी नियमानुसार दी गई है। जैसे–प्रथम सर्ग के अन्त में **"विदधति सोपधि-सन्धि-दूषणानि"** के द्वारा कवि ने अगले सर्ग की सूचना दी है कि अगले सर्ग में सन्धि तोड़ने विषयक वार्ता होगी। अन्तिम श्लोक में–**"रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः"** से ज्ञात होता है कि महाराज युधिष्ठिर को विपत्ति के बाद पुनः लक्ष्मी प्राप्त होगी। दूसरे सर्ग के 54वें श्लोक में व्यासागमन की सूचना द्वारा तृतीय सर्ग के विषय का सूत्रपात हो जाता है। महाकाव्य का नाम आराध्य देव शिव जो **'किरात'** के रूप में प्रकट होते हैं, उनके तथा महाकाव्य के नायक अर्जुन को लक्ष्य में रखकर रचा गया है **"किरातश्च अर्जुनश्च इति किरातार्जुनौ (द्वन्द्व) तौ अधिकृत्य कृतं काव्यम् इति किरातार्जुनीयम्"**।

कथा की पृष्ठभूमि- किरातार्जुनीयम् महाकाव्य की कथा महाभारत पर आधारित है। महाभारत को कई नाटकों और महाकाव्यों का उपजीव्य होने का गौरव प्राप्त है। यह काव्य महाभारत की मुख्य कथा से ही संबद्ध है। पाण्डु की मृत्यु के बाद पाण्डव धृतराष्ट्र के संरक्षण में रहने लगे। ज्येष्ठ पाण्डव जब युवक हुए, तब धृतराष्ट्र ने उन्हें हस्तिनापुर का युवराज बनाया। धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन युधिष्ठिर के युवराज बन जाने से ईर्ष्या से जल रहा था और उनसे अत्यन्त द्वेष करने लगा था। दुर्योधन ने पाण्डवों को हर प्रकार कष्ट देने और उन्हें नष्ट करने का जाल रचा, किन्तु पाण्डव बचते गये। उन्हें लाक्षागृह में भी जला डालने का षड्यन्त्र दुर्योधन ने रचा था, किन्तु इस बार भी पाण्डव बच निकले। वे ब्राह्मणों का वेश धारण कर गुप्तरूप से रहने लगे। इसी अवधि में अर्जुन ने द्रुपद राजा के दरबार में द्रौपदी के स्वयंवर में अपने धनुष चलाने के कौशल का प्रदर्शन किया।

राजकुमारी द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनी। जब धृतराष्ट्र को पाण्डवों के जीवित होने का समाचार मिला, तो उन्होंने उन्हें बुलाकर अपने पुत्रों तथा पाण्डवों में राज्य का विभाजन कर दिया। यमुना के तट पर इन्द्रप्रस्थ नगर को युधिष्ठिर ने अपनी राजधानी बनाया और चारों दिशाओं को जीतकर राजसूय यज्ञ किया। युधिष्ठिर की उन्नति देखकर ईर्ष्यालु दुर्योधन ने एक दूसरा षड्यन्त्र रचा। उसने अपने पिता से कहकर पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए निमन्त्रित किया। दुर्योधन के मामा शकुनि की कपटपूर्ण चाल के आगे पाण्डव दाँव के बाद दाँव हारते गये। राज्य के साथ द्रौपदी को भी हार गये। भरी सभा में दुर्योधन के आदेश पर दुःशासन ने द्रौपदी का अपमान किया। इस पर क्रुद्ध होकर भीम ने दुःशासन का रक्त पीने तथा दुर्योधन की जाँघ तोड़कर उसका वध करने की प्रतिज्ञा की। उसकी प्रतिज्ञा की सूचना पाकर चतुर धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को बुलाकर उन्हें राज्य वापस कर दिया। अपने इस षड्यन्त्र में भी असफल होने पर दुर्योधन ने उन्हें फिर द्यूतक्रीड़ा के लिए आमन्त्रित किया। इस बार शर्त यह रही कि हारनेवाला बारह वर्ष तक वनवास एवं एक वर्ष अज्ञातवास करेगा। यदि अज्ञातवास की अवधि में वह पहचान लिया गया, तो उसे फिर उसी प्रकार तेरह वर्ष व्यतीत करने पड़ेंगे। इस बार भी पाण्डव हार गये। अपने भाइयों तथा पत्नी द्रौपदी को साथ लेकर युधिष्ठिर ने वन की राह ली और अन्त में द्वैत नामक वन में रहने लगे। किरातार्जुनीयम् महाकाव्य की कथा इसके बाद की घटना से आरम्भ होती है।

प्रथमसर्ग की कथावस्तु- द्वैतवन में निवास करते हुए युधिष्ठिर ने दुर्योधन की नीति एवं शासन व्यवस्था जानने के लिए एक किरात को दूत के रूप भेजा। वह सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर महाराज युधिष्ठिर के पास लौटा और सारी बातें कही। वर्णन की दृष्टि से यह सर्ग दो भागों में बाँटा जा सकता है–

1. युधिष्ठिर के प्रति वनेचर की उक्ति, तथा 2. युधिष्ठिर के प्रति महारानी द्रौपदी की उक्ति।

वनेचर ने कुरुप्रदेश पहुँचकर ब्रह्मचारी के वेष में वहाँ का सारा समाचार गुप्तरूप से जान लिया, तदनन्तर लौटकर शिष्टतापूर्वक अभिवादन करके शत्रु की वास्तविक स्थिति का निःसंकोच वर्णन कर दिया। वनेचर के रूप में स्वयं भारवि की उच्च वर्णन--शक्ति उन्हीं के शब्दों में–**"सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी"** एवं **"विनिश्चितार्था"** है।

वनेचर कहता है कि राजाओं का चरित्र निसर्गतः दुर्बोध होता है, तो भी अपनी बुद्धि के अनुसार उसने जैसा समझा वैसा वर्णन किया कि दुर्योधन राज्यस्थ होकर भी पाण्डवों से भयभीत है। वह न्यायप्रिय शासन द्वारा अनीति

Scanned with CamScanner

से जीती हुई पृथ्वी को नीति से वश में करना चाहता है। वह आश्रितों को मित्रवत्, मित्रों को बन्धुवत्, और बन्धुओं को शासन करता हुआ मानता है। वह कर्त्तव्यपालन में पुत्र और शत्रु के साथ एकसा व्यवहार करता है अर्थात् पुत्र के अपराध भी क्षमा नहीं करता। सिंचाई-व्यवस्था से अन्न का अभाव नहीं होता। प्रशंसनीय कार्य के लिए कर्मचारियों को पुरस्कृत करता है। योद्धा लोग प्राणपण से भी उसकी रक्षा करना चाहते हैं। उसे धनुष उठाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। राजा लोग उसे स्वयं दरबार में आकर कर देते हैं तथा उसकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं। अब वह दुःशासन को युवराज बनाकर पुरोहित के आदेशानुसार यज्ञादि कर्म करता रहता है। तथापि बलवान् व्यक्ति से विरोध होना बहुत दुःखदायी होता है, अतः वह आपका नाम प्रसंगवश आने पर नतमस्तक होकर वैसे ही दुःखी होता है, जैसे विष-वैद्य के मन्त्रोच्चारण करने पर सर्प नतमुख होकर दीर्घ श्वास लेता है। इसके बाद महाराज युधिष्ठिर ने वनेचर को उचित पारितोषिक देकर विदा किया और द्रौपदी के भवन में जाकर छोटे भाइयों के समक्ष वनेचर कथित पूर्ण वृत्तान्त कह दिया। जिसे सुनकर द्रौपदी कहने लगी।

इस सर्ग के 46 श्लोकों में से 27वें श्लोक में महारानी द्रौपदी का प्रवेश है। 28वें श्लोक से वे युधिष्ठिर को अपनी दुःखभरी व्यथा से अवगत कराती हैं, क्योंकि वे शत्रु की वृद्धि तथा अपनी कारुणिक स्थिति को सहन करने में असमर्थ हैं। द्रौपदी ने कहा कि स्त्रीजनों के उपदेश युधिष्ठिर जैसे महानुभावों के लिए अपमान तुल्य है तथापि चित्त की व्यथा उन्हें वह सब कहने को विवश करती है। वह कहती है कि उनके समान कौन कुलवधू तुल्य राज्यलक्ष्मी को इस प्रकार ठुकरा देगा? भीम जो रक्त चन्दन से सुसज्जित होकर सुन्दर पलंग पर सोते थे, वे आज अपरिष्कृत भूमि पर लेटने को बाध्य हैं। उत्तर कुरु जीतकर प्रचुर धन लाने वाले अर्जुन आज वल्कल वस्त्र पहनते हैं। सुकुमार नकुल एवं सहदेव कठिन भूमि पर शयन करते हैं। वह शान्ति के मार्ग को राज्योचित नहीं बताती और कहती है कि उन्हें शान्ति को छोड़कर शत्रुओं को नष्ट करने के उपाय के विषय में चिन्ता करनी चाहिए। यदि शान्ति ही सिद्धि का साधन है, तो महाराज को धनुषादि राजचिह्नों का परित्याग कर अग्नि में हवन करना चाहिए। अपकारी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए सन्धि का पालन या समय की प्रतीक्षा करना ठीक नहीं है, अतः किसी बहाने से सन्धि तोड़कर दुर्योधन पर आक्रमण कर देना चाहिए।

इस सर्ग में द्रौपदी के तीखे वाक्यों से पाण्डवों की हीनावस्था का बड़ा जीवन्त वर्णन किया गया है। वह चारों भाइयों की दुर्दशा का एकमात्र कारण युधिष्ठिर को मानती है। स्वयं द्रौपदी अपनी दुर्दशा का यथार्थ चित्रण कटु शब्दों में करती है, तथापि युधिष्ठिर सही अर्थों में धर्मराज के रूप में दृष्टिगत होते हैं। अन्त में महारानी क्रुद्ध होते हुए भी अपने पति के प्रति मंगलकामना प्रकट कर उच्चादर्श से युक्त पत्नी की भूमिका का निर्वहन करती है।

इस सर्ग में "**भारवेरर्थगौरवम्**" की उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है। छोटी-छोटी सूक्तियों में गम्भीर भाव को भरकर प्रत्येक शब्द की सार्थकता सिद्ध होती है। इस सर्ग में राजनीति-कौशल, शब्द-वैचित्र्य, अर्थगौरव तथा शिष्टाचार, प्रजा का राजा के प्रति कर्त्तव्य सभी एक साथ उपलब्ध हैं।

महाभारत और किरातार्जुनीय के कथानक में अन्तर :-- "किरातार्जुनीयम्" महाकाव्य की कथा महाभारत के वनपर्व के अर्जुनाभिगमन नामक खंड से और उसी पर्व के कैरातपर्व से ली गई है। अर्जुनाभिगमनपर्व के सत्ताईसवें और अट्ठाइसवें अध्यायों में द्रौपदी युधिष्ठिर से उनके क्रोध को उद्दीप्त करने वाले वचन कहती है। उसके बाद युधिष्ठिर क्रोध का परित्याग करने तथा शांति का मार्ग अपनाने का उपदेश देते हैं। तीसवें, इकतीसवें और बत्तीसवें अध्यायों में द्रौपदी तथा युधिष्ठिर के बीच वार्तालाप है, जिसमें युधिष्ठिर क्षमा के मार्ग की तथा द्रौपदी शत्रु से प्रतीकार करने की बात युक्ति से प्रस्तुत करती है। आगे के तीन अध्यायों में (34-36) युधिष्ठिर तथा भीम के वार्तालाप हैं। छत्तीसवें अध्याय में व्यास आते हैं। सैंतीसवें अध्याय में अर्जुन युधिष्ठिर की आज्ञा से इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने जाते हैं। कैरातपर्व के अड़तीसवें अध्याय में अर्जुन की कठोर तपस्या के विषय में भगवान् शंकर तथा अन्य मुनियों में वार्तालाप है। अगले अध्याय में किरात वेशधारी शिव तथा अर्जुन का युद्ध होता है। भगवान् शिव प्रसन्न होकर प्रकट होते हैं और अर्जुन शिव की स्तुति करते हैं। पाशुपत अस्त्र देकर भगवान् शिव प्रस्थान करते हैं (चालीसवां अध्याय) तथा अन्त में देवतागण अर्जुन को दिव्य अस्त्र प्रदान करते हैं (इकतालीसवाँ अध्याय)।

यद्यपि "किरातार्जुनीय" की कथा महाभारत की ही कथा है, तथापि कवि ने अपनी प्रतिभा से बहुत से परिवर्तन कर दिये हैं और अपनी ओर से पर्याप्त सामग्री जोड़ दी है। यदि कवि ने केवल महाभारत की कथा को ही ग्रहण

Scanned with CamScanner

कथा होता, तो सम्पूर्ण महाकाव्य केवल सात सर्गों में समाप्त हो सकता था। चौथे सर्ग से लेकर दसवें सर्ग तक के अंश के तथा युद्धविषयक दो सर्गों के न रहने पर भी कथा में कोई हानि नहीं होती। किन्तु कवि ने इस कथा को 18 सर्गों में वर्णित किया, नवीन रुचि प्रदान की तथा सजीवता प्रदान की। महाभारत की कथा तथा किरातार्जुनीय की कथावस्तु में निम्नलिखित अन्तर विशेष रूप से उल्लेखनीय है–

(1) सर्वप्रथम कवि ने पात्रों के स्वरूप में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। महाभारत के उद्धत भीम भारवि के हाथों एक सुयोग्य राजनीतिज्ञ बन जाते है।।

(2) महाभारत में व्यास मन्त्र का उपदेश युधिष्ठिर को देते हैं और युधिष्ठिर अर्जुन को, किन्तु किरातार्जुनीय में व्यास अर्जुन को ही उपदेश देते हैं।

(3) महाभारत में अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर मन की गति से भी तीव्र मन्त्र की शक्ति से पहुँच जाते हैं। किरातार्जुनीय में यक्ष उन्हें पहुँचाता है।

(4) "किरातार्जुनीय" में इन्द्र अर्जुन को मोहित करने के लिए अप्सराओं को भेजते है। इन अप्सराओं तथा इनकी क्रीड़ाओं का वर्णन किरातार्जुनीय में चार सर्गों में किया गया है। इन्द्र एक तपस्वी का वेश धारण करते हैं और अर्जुन को तपस्या से विरत होने का उपदेश देते हैं। महाभारत के अनुसार अर्जुन के इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचते ही इन्द्र तपस्वी वेश में उपस्थित होते हैं।

(5) महाभारत में शिव किरात का वेश धारण कर उमा के साथ आते है और अर्जुन से अकेले लड़ते हैं। "किरातार्जुनीय" के अनुसार वे सेना सहित लड़ते हैं, किन्तु अर्जुन उनकी सेना को तितर-बितर कर देते हैं। सेना का वर्णन कर कवि अर्जुन की वीरता के महत्त्व की वृद्धि कर देता है। युद्ध के वर्णन में भी कवि भारवि का वर्णन अधिक सजीव है, जबकि महाभारत का युद्ध वर्णन नीरस एवं शुष्क है।

(6) युद्ध का अन्त भी दोनों में भिन्नरूप से होता है। महाभारत में अर्जुन बेहोश हो जाते हैं और जब होश में आते हैं, तो किरात के सिर पर वही माला देखते हैं, जो उन्होंने शिवमूर्ति पर चढ़ायी थी और उसी के कारण शिव को पहचान लेते हैं। "किरातार्जुनीय" के अनुसार जब द्वन्द्वयुद्ध में अर्जुन शिव का पैर पकड़ते हैं, तो शिव प्रसन्न होकर प्रकट हो जाते हैं। वे उन्हें हृदय से लगा लेते हैं तथा पाशुपत अस्त्र प्रदान करते हैं।

(7) इसके अतिरिक्त भारवि ने अर्जुन की तपस्या का, वनस्थली एवं वन का तथा नाना दृश्यों का सजीव वर्णन कर "किरातार्जुनीय" को कमनीय एवं मनोरम कलेवर प्रदान किया है।

(8) कवि ने अपने पात्रों को मानव प्राणियों की तरह प्रस्तुत किया है। महाभारत की कथा का अतिमानवीय तत्त्व "किरातार्जुनीय" में गौण हो जाता है।

(9) प्रकृति चित्रण की दृष्टि से भी "किरातार्जुनीय" महाभारत से भिन्न है। और यह सौन्दर्य इस महाकाव्य में ही देखा जा सकता है।

Scanned with CamScanner